प्रीत

ज्ञान मार्ग की साधना के लिए तीव्र बुद्धि तथा इच्छा शक्ति की आवश्यकता है . विवेक तथा वैराग्य से यह साधना प्रारम्भ की जाती है . इसके पश्चात् षठ सम्पति की क्रियाएं की जाती हैं . ये साधन जन साधारण के लिए कठिन होने के कारण उपयोगी नहीं हैं , परन्तु प्रेम मार्ग सरल तथा सुगम है . लेकिन प्रेम में विरह तथा अभीप्सा होनी चाहिये . प्रेमी ईश्वर की खोज में इतना व्याकुल हो जाए कि उसे ईश्वर के अतिरिक्त कुछ और सूझे ही नहीं . प्रभु प्राप्ती के लिये वह निरन्तर पागल सा बना रहे .

ज्ञान मार्ग में त्याग पर बल दिया जाता है . प्रेम में भी त्याग की भावना स्वभावतः आ जाती है . प्रेम एक से होता है . इसलिए प्रेमी ईश्वर के लिये सब कुछ न्योछावर कर देता है . जब तक साधक माया की वस्तुओं के मोह से मुक्त नहीं होता वह प्रेम प्राप्त नहीं कर सकता . मोह तथा अहँकार का त्याग आवश्यक है .

" रे मन , ऐसी हर सौं प्रीतकर जैसी जल कमलोही
लहरी नाल पछाड़िये , भी बिगसै अस्नेह ,
जल में जीअ उपाय के , बिन जल मरण तिनीह .

हे मनुष्य ! ईश्वर से ऐसा प्रेम कर जैसे जल के साथ कमल का होता है . कमल पानी की चोंटे बार - बार खाता हुआ भी खिला रहता है . इसी प्रकार जो पुरुष ईश्वर से प्रेम करते हैं , उनको चाहें कितने ही दुःख आएं , वे दुःखों को सहन करके भी प्रसन्न चित्त रहते हैं तथा माया के प्रभाव से मुक्त रहते हैं . प्रेमी ईश्वर को किसी तरह का भी दोष नहीं देते . उसे अपने जीवन का आश्रय मानते हैं . उसे भूलने को अपनी मृत्यु समझते हैँ .

" अन्तर पिरी प्यार , किऊँ पिर बिन जीवीए राम
जब लग दरस न होए , किउं अमृत पीवीए राम ."

जैसे जल के किसी जीव को जल से बाहर निकाल दिया जाये तो उसकी मृत्यु हो जाती है , उसी प्रकार प्रेमी की अवस्था होती है . प्रेमी एक क्षण के लिए भी ईश्वर के नाम को नहीं भूलता .

प्रेम के अतिरिक्त मनुष्य को और कोई रास्ता नहीं है जिससे कि वह भव सागर (जन्म -मरण) से मुक्त हो सके . इसलिए महापुरुष कहते हैं कि क्षणभंगुर और परिवर्तनशील सृष्टि की वस्तुओं से मुँह मोड़कर ईश्वर के चरण कमलों में अपना ध्यान लगाओ . ईश्वर कहीं दूर नहीं है , वह तो मनुष्य के अन्तर में है , उसके समीप जाने

का प्रयत्न करना चाहिये . मनुष्य भ्रम वश यह विचार करता है कि ईश्वर कहीं दूर है . इस भ्रम से मुक्त होना चाहिये .

" रे मन , ऐसी हर सों प्रीत कर जैसी मछली नीर

ज्यों अधिकों तियों सुःख घणो , मन तन सांत सरीर

बिन जल घड़ी न जीवेई , प्रभु जाने अभ पीर . "

हे मनुष्य ! ईश्वर से ऐसा प्रेम कर जैसे मछली का पानी से सम्बन्ध होता है . जैसे -पानी अधिक होता है वैसे ही मछली अधिक प्रसन्न होती है . इसी तरह अन्तर में अधिक प्रेम होने से अधिक शांति का अनुभव होता है . जितना प्रेम बढ़ता जाता है , उतनी ही अन्तर में शांति (मन की वृत्तियों से शांति) मिलती जाती है . जल बिना मछली एक क्षण भी जीवित नहीं रह सकती . जल वियोग से मछली के हृदय में जैसी पीड़ा उठती है , वैसी ही प्रेमी के अन्तर में होनी चाहिये .

" रे मन , ऐसी हर सौ प्रीत कर जैसी चात्रिक मेंहू

सर भर थल हरि -आवले , इक बूंद न पावई केह

कर्म मिले सो पाइये , किरत पया सिर देह . "

हे मन ! ईश्वर के साथ ऐसी प्रीत कर जैसी पपीहे की बादल के साथ होती है . वर्षा होने से नदियाँ आदि पूर्ण हो जाती हैं , चारों ओर वनस्पति प्रसन्नचित अनुभव होती है , परंतु यदि पपीहे के मुख में स्वांति बूंद न पड़े तो उसको ऐसी वर्षा से क्या लाभ ? इसी प्रकार यदि परमार्थी को शान्ति नहीं मिलती तो उसके लिये सर्व प्रकार की वस्तुओं का सुःख प्राप्त होते हुए भी उसका कोई लाभ नहीं है . वह तो तभी हर्षित होगा जब उसे प्रेम की प्राप्ती होगी . इसके लिए चात्रिक की तरह निरन्तर अपने प्रीतम की ओर निहारते रहना चाहिये , प्रेम की निरन्तर अभीप्सा रहनी चाहिये . प्रभु दयानिधि हैं , प्रेम के सागर हैं . अवश्य कृपा होती है

. ☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆

राम संदेश / मई - जून , २००७.